कृष्ण भक्ति गायन परम्परा के पारम्पारिक वाद्य यंत्र

अनुपूर्णा श्रीवास्तव

भारत में षड्दर्शनों के समान ही संगीत - शास्त्र भी ब्रह्म संबंधी चिंतन का विषय रहा है। मानव जीवन का परम लक्ष्य परमात्मा का साक्षात्कार माना गया है तथा इसी लक्ष्य की प्राप्ति का सर्वोत्तम माध्यम संगीत होने के कारण उसे आध्यात्म के रंग में पूरी तरह रंगने का प्रयत्न किया। भारत धर्म प्रधान देश होने के कारण भारतीय विचारधारा सदा से आदर्श की भावभूमि पर प्रवाहित होती रही है। इसके कण-कण में राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर की आत्मा समाई हुई है। भारतीय साधकों और अराधकों का लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति तथा परमात्मा से संबंध स्थापित करना रहा, अतः उन्होंने संगीत कला को भी इस ओर उन्मुख किया। श्रुति, स्वर, ताल, राग, वाद्य प्रभृति से देवी - देवताओं के संबंध स्थापित किए। सर्वविदित है कि तांडव और लास्य नृत्य के आदि गुरू भगवान शंकर और पार्वती है। नौ लाख गोपियों संग वृंदावन में रास रचाने वाले मुरली मनोहर भगवान श्री कृष्ण तो मानो संगीत के साक्षात् अवतार हुए। आज भी यदि संगीत कला से श्रीकृष्ण को अलग कर दिया जाए तो पात -पुष्प विहिन शुष्क वृक्ष के समान कला का स्वरूप शेष रह जाएगा। पुराण, साहित्य का तो सर्वाधिक चर्चित एवं प्रिय अवतार श्रीकृष्ण ही है। संस्कृत का ललित काव्य साहित्य भी कृष्ण

चरित्र के प्रसंगों पर प्रकाश डालता है व सुदीर्घ परम्परा के पश्चात् मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में श्रीकृष्ण विषयक रचनाओं का सूत्रपात होता है। अतः श्री कृष्ण विषयक काव्य ही प्रत्येक ग्रन्थ, प्रत्येक काल का मुख्य आकर्षण रहा है। कृष्ण भक्त कवियों ने साकार, सगुण कृष्ण के रूप पर विश्वास करके उनकी लीला के गायन को अपनी साधना का मुख्य लक्ष्य बनाया। कृष्ण काव्य का प्रादुर्भाव 14 -15 वीं शताब्दी में हुआ। यद्यपि कृष्ण भक्ति की भावना अत्यन्त प्राचीन है परन्तु भगवत पुराण तथा जयदेव के 'गीत-गोविंद' की काव्य परम्परा से कृष्ण भक्ति का प्रचार-प्रसार हुआ। भक्ति काल के कवियों ने राम एवं कृष्ण को विष्णु के अवतार के रूप में स्वीकार किया - एक ओर श्रीराम का मर्यादावादी रूप है तो दूसरी ओर श्री कृष्ण का रसेश्वर प्रेममय स्वरूप। श्रीकृष्ण के इसी प्रेममय स्वरूप ने साधारण जनता को न केवल अधिक आकृष्ट किया बल्कि उसके स्वरूप में चिंतन विलिन होकर, उनके जीवन-चित्र लीलाओं का दर्शन गेय गीतों में प्रस्तुत कर अपने अन्तर्भावों से सहेज कर, विभिन्न भक्तिपरक काव्य रचे। इस गीत पद्धति का प्रचलन मिथिला के कवि विद्यापति, बंगाल के चण्डीदास एवं जयदेव के गीत-गोविंद आदि से प्रभावित होकर ही हुआ। इस प्रकार भक्ति परम्परा पूर्वी भारत से दक्षिणी भारत की ओर वहीं से पश्चिम भारत से होती हुई वल्लभाचार्य जी का सानिध्य पाकर संपूर्ण भारत में विस्तृत गई। इस भक्तिधारा में मुगलकाल का प्रभाव भी

बना परन्तु अपनी परम्परा को कायम रखते हुए मुख्यतः संकिर्तन स्वरूप ही भक्ति होती रही, जिसके प्रचार प्रसार में वल्लभ सम्प्रदाय, गौडिय सम्प्रदाय, हरिदासी सम्प्रदाय, राधावल्लभ सम्प्रदाय तथा निम्बार्क सम्प्रदाय का महत्वपूर्ण योगदान मिलता है। श्रीकृष्ण की इस भक्तिधारा में जहां भक्तिपरक पदों का गायन चलता रहा वहीं से वाद्यों से ताल एवं स्वरों का भी साथ रहा। इस परपरा में संगीत नित्य प्रति प्रयोग होने के कारण अनेकों वाद्यों का भी प्रयोग किया गया। अतः उसमें चतुर्विध वाद्य एवं अनेकों लोक सांगीतिक प्रादेशिक वाद्य आज भी अलग अलग सम्प्रदायों में प्रयोग होते हैं। आज कदाचित कुछ वाद्य अज्ञात भी हो चुके हैं, जिनके नामोल्लेख में -

रूंज, मुरज, मदिलरा, पिनाक, अमृत कुण्डली, पटह, यंत्र, उपंग, मधुजंत्र, श्रीमंडल, षट्ताल, दूधारी, ममक है।

कृष्ण काव्य में भक्त कवियों ने कृष्ण के लोकरंजन में उनके जन्म तथा उससे संबंधित विविध उत्सवों तथा लीलाओं आदि प्रसंगों में अनेक प्रकार के वाद्य यंत्रों का उल्लेख किया है।

रुद्र वीणा -

रुद्र वीणा 12 मुठी लम्बी और दस अंगुल परिधि की होती है। इसका दण्ड पोले बांस का बना होता है। इसके दोनों ओर दो तुम्बे लगे होते हैं। दण्ड के ऊपर पीतल अथवा तांबे के परदे तथा ऊपर बाईं तरफ चार तथा दाईं तरफ एक एक तार लगे होते हैं। कुल चार मुख्य

तारें एवं तीन चिकारी की तारें लगी होती है। यह वाद्य शास्त्रीय संगीत में अधिक प्रयोग किया जाता है।

वीणा -

मंदिरों में एक ओर प्रकार की भी वीणा दिखाई देती है, जिसके आकार प्रकार रूद्र वीणा के समान हैं किन्तु चार तारें न होकर केवल एक तार ही लगा होता है।

स्वरमण्डल -

वीणाओं के एक प्रकार में इक्कीस तारों वाली मत्तकोकिला वीणा वाद्य का प्रमुख स्थान था जो आज स्वरमण्डल के रूप में प्रयोग किया जाता है। इस वाद्य में 35 तारे होती हैं व छोटे तथा बड़े दोनों आकार में मिलती है। ये आकार में 5 कोण, 3 फुट लम्बी, डेढ फुट चौड़ी तथा 7 इंच ऊंची होती है। कवियों ने इस वाद्य का उल्लेख कई पदों में किया है।

सारंगी -

लोक संगीत एवं शास्त्रीय संगीत दोनों में सारंगी का बहुत महत्व है। यह दो फुट लम्बी बिना परदे के होती है। इसमें दो या तीन तारें होती है। गज की सहायता से बजने वाला वाद्य है। सारंगी के कई रूप जैसे- जोगिया सारंगी, गुजरातन सारंगी, धानी सारंगी, सिन्धी सारंगी, अलाबु सारंगी मिलते है। प्राचीन काल में सारंगी का प्रयोग रास नित्य प्रति संकीर्तन के साथ होता रहा है।

रबाब -

सारंगी के समान ही मिलता जुलता वाद्य रबाब है जो सारंगी से बडी होती है। इसकी सात तांते लगी होती है। इसकी तबली चमडे से मढ़ी होती है। अष्टछापी संगीतज्ञों ने भी रबाब का वर्णन किया है।

पखावज-

पखावज का आविष्कार मृदंग से माना गया है। विद्वान पखावज शब्द को कई शब्दों का परिष्कृत रूप क्रमश: पक्षवाद्य, पखाउज, पखावुज मानते हैं। इसका प्रयोग अष्टछाप संगीत, रास मण्डलियों में तथा गायन में अधिक होता है। रासलीला में पखावज बजते ही नृत्यारंभ होता है। पखावज की लम्बाई 12 मुठ्ठी तथा मध्य की गोलाई इससे कुछ अधिक होती है। इसका मुख 12 अंगुल का व मेष के चमड़े से मढ़ा होता है। इसके दाईं ओर 6 अंगुल गोलाकार लौहचूर्ण की बनी स्याही तथा बाईं ओर बजाने के समय आटा गूंथकर लगाते हैं। इस सुरीले वाद्य की आवाज भारी होने के कारण दर्शकों पर बहुत अच्छा प्रभाव डालती है।

खोल-

खोल वाद्य प्राचीन गोपुच्छा आकार का अवनद्ध वाद्य है जो मृदंग वाद्य के समान ही है। इसका एक दायां भाग छोटा व ऊंची आवाज की तथा बायां भाग बड़ा व गंभीर आवाज़ की उत्पत्ति करता है। मध्यकालीन कवि चण्डीदास, गोविंददास, ज्ञानदास ने भी खोल वाद्य

साथ कीर्तन किया। आज गौडिय सम्प्रदाय और ISkcon में भजन कीर्तन के साथ अधिक प्रयोग किया जाता है।

तबला-

तबला वाद्य के दो भाग होते है, जिन्हे 'दायां' तथा 'बायां' अथवा 'तबला' तथा 'डग्गा' कहते हैं। दोनों के मुख खाल की पुड़ी से मढ़े रहते हैं। बनावट और मुख के छोटे व्यास के कारण तबले की आवाज पतली होती है और डग्गे की आवाज मोटी और भारी होती है। आज तबला शास्त्रीय एवं लोक संगीत दोनों में महत्वपूर्ण स्थान बनाए हुए है।

ढोलक-

ढोलक या ढोलकी मुख्य रूप से भक्ति संगीत या लोक संगीत में प्रयुक्त ताल वाद्य है। होली के गीतों में ढोलक का जमकर प्रयोग होता है। ढोलक आम, बीजा, शीशम, सौगान या नीम की लकड़ी से बनाई जाती है। लकड़ी को पोला कर दोनों मुखों पर बकरे की खाल डोरियों से कसी रहती है। डोरी में लगे छल्ले न्यूनतम स्वर मिलाने के काम आते है।

निसान-

ब्रज में विशेष रूप से होली के अवसर पर स्त्रियों के नृत्य तथा पुरुषों के गायन करते समय यह वाद्य बजाया जाता है। इस वाद्य को बम (भैंसे की पूरी खाल से निर्मित वाद्य) कहना उचित प्रतीत होता है। इसी बम नामक वाद्य को सभ्य समाज में निसान कहा जाता है।

बाँसुरी-

बाँसुरी एक प्राचीन सुषिर वाद्य है जिसका घनिष्ठ संबंध श्रीकृष्ण के साथ बताया जाता है। वंशी, वेणु, मुरली आदि बाँसुरी के प्रकार ही है जिनमें आकार, बनावट एवं आवाज का अंतर मिलता है। बांसुरी बिना गांठ के बांस की बनी होती है। इसमें साधारणतः सात छिद्र होते है। इसकी लम्बाई 18 अंगुल की होती है। यह लाल चंदन, सोना, चांदी, कांसा आदि की भी बनाई जाती है। सर्वविदित मान्यता है कि श्रीकृष्ण की बांसुरी की मधुर ध्वनि से प्राणी मात्र अपनी सुधबुध खो मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। मंदिरों में भी इसका प्रयोग किया जाता है। कवि सूरदास ने भी अपने पदों में वर्णन किया है-

नंद नंदन सुघराई बांसुरी बजाई ।

सरगम सुनी कैंसाधि सप्त सुरनि गाई ।।

शहनाई-

शहनाई वाद्य मुख्यतः होली के समय बजाया जाने वाला वाद्य है। लाल चन्दन की लकड़ी से बना एक हाथ लम्बा होता है। इसमें एक एक इंच की दूरी पर छोटे-छोटे छिद्र होते है। इसके मुख का व्यास चार अंगुल होता है। स्वर उत्पन्न करने के लिए मुख पर दो इमली के पत्ते लगे होते हैं। इसका भी उल्लेख अष्टछाप संगीत में वर्णन मिलता है।

महुवरि -

इस वाद्य का प्रयोग सपेरे अधिक करते हैं, इसीलिए इसे बीन भी कहते हैं। इसके मध्य में तुम्बी होती है। इस वाद्य के ऊपर नीचे दोनों ओर नलिका होती है नीचे की नालिका में बांसुरी के समान छेद होते हैं। इसे एक छोर से फूंककर छिद्रों पर अंगलियों की सहायता से बजाते हैं। मंदिरों में तथा कीर्तन आदि स्थानों पर यह वाद्य प्रयोग किया जाता है।

शंख-

शंख एक सागर के जलचर का बना हुआ ढांचा है जो कि ज्यादातर पेचदार वामावर्त या दक्षिणावर्त में बना होता है। यह हिन्दु धर्म में प्राचीन काल से देखने को मिलता है। भगवान विष्णु के दाएं ऊपरी हाथ में शोभा पाता है। श्रीकृष्ण जी ने भी इसे महाभारत के युद्ध में प्रयोग किया था। शंख अनेकों प्रकार के मिलते हैं। शंख राग रागनियों से युक्त सुषिर वाद्य है, जो प्रकृति प्रदत्त है।

जलतरंग-

जल से भरे छोटे व क्रमशः बड़े प्याले जिन पर ध्वनि तरंग उत्पन्न करके स्वरोत्पत्ति की जाती है, उसे जलतरंग कहते है। इसमें रागानुसार प्यालों को अर्धवर्तुलाकार रखकर लकड़ी की बनी दो पतली डंडियों से प्रहार करके स्वर निकाले जाते हैं। इसका भी प्रयोग कई मंदिरों में किया जाता है।

हारमोनियम-

यह पेटीनुमा बना वाद्य हवा के दबाव से पीतल के पर्दों (रीड्स) द्वारा स्वर उत्पत्ति करता है। आधुना गायन- वादन में हारमोनियम सबसे ज्यादा प्रयोग किया जाता है। वर्तमान रासलीलानुकरण में प्रत्येक रास मण्डली द्वारा इस वाद्य का प्रयोग होता है।

घुंघरू-

घुंघरू नामक घन वाद्य कृष्ण काव्य में अत्यन्त प्राचीन है। कई पदों में 'नुपुर' शब्द से घुंघरू को आलंकृत किया गया है। मीराबाई भी भक्ति विलिन होकर घुंचरू बांध कर नाचा करती थी। यह पीतल की छोटी गोल घंटियां जिनके अन्दर लोहे के टुकड़े रहते हैं। इन्हें डोरी में पिरोकर टखनों पर बांधा जाता है या कीर्तन आदि में हाथ से थाप देते हुए भी आवाज़ उत्पन्न की जाती है।

झांझ -

झांझ नामक घन वाद्य प्रायः 7 -10 अंगुल के आकार के होते है, जिसके मध्य छोटा- से गढ़े में एक-एक डोरी लगी रहती है। उस पर अधिक कपड़ा बांधकर हाथ की मुठ्ठी से पकड़ने योग्य बना लेते है जिसे दोनों हाथों से टंकार करते हुए बजाते है। यह अधुना रास में एवं कीर्तन समय अधिक प्रयोग करते हैं।

मंजीरा-

मध्यकाल में प्रायः सभी भक्त संगीतज्ञों ने वाद्यों की नामावली में मंजीरा वाद्य का विशेष प्रयोग किया है। यह कांसा, पीतल आदि

धातु का दो से चार अंगुल तक के व्यास का होता है। मध्य में एक अंगुल से डेढ अंगुल तक गहरे होते है जहाँ एक छिद्र होता है जिसमें एक मोटा धागा या सुतली पिरोई जाती है। इसी सुतली को अंगलियों में लपेट कर इसका वादन मन्दिरों में किए जाने वाले कीर्तन या विवाहादि मंगल उत्सवों के अवसरों पर ढोलक के साथ होने वाले गान के साथ किया जाता है।

झालरि-

ब्रज प्रदेश में यह 'घड़ियाबल' कहा जाता है। यह दिखने में घण्टे जैसी परन्तु रूप से छोटी होती है। इसका व्यास 8 से 12 इंच होता है। घण्टे के समान ही यह लकड़ी के मोगरी से बजाई जाती है। अधिकतर मंदिरों में इसका प्रयोग होता है।

उपरोक्त परम्परागत वाद्यों का विवरण उसी तरह चलता रहा कि भक्तों ने मंदिरों में संगीत की शुद्धता व शैलियों की सुगमता को अधिक महत्व देकर संगीत का परिष्कृत रूप विविध प्रकारों में एकीकृत किए हुए, उसकी रंजकता को विषयपरक दृष्टिगत किया।

संदर्भ ग्रन्थ:

1. अष्टछाप संगीत एक विश्लेषण, डॉ. नीरा शर्मा, प्रकाशक नवजीवन पब्लिकेशन्स, नवजीवन कॉम्पलेक्स, निवाई, प्रथम संस्करण, 2004.

2. ब्रज संस्कृति में संगीत, अंजू शर्मा, राधा पब्लिकेशन्स, दरियागंज, नई दिल्ली, 1996.

3. मध्यकालीन काव्य, चित्र एवं संगीत मे रागतत्व, डॉ रघुनंदन प्रसाद तिवारी, विद्यानिधि प्रकाशन, खजूरी खास, दिल्ली 110094.

4. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत, डॉ उषा गुप्ता, लखनऊ विश्वविद्यालय, प्रकाशन।

5. पुष्टिमार्गीय मंदिरों की संगीत परम्परा हवेली संगीत, प्रो. सत्यभान शर्मा, प्रकाशक राधा पब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण, दरियागंज, नई दिल्ली, 110002.

6. रीतिकालीन श्रृंगारिकता एवं ललित कलाएं, डॉ. जनेश्वर प्रसाद, वाराणसी, भारतीय विद्या प्रकाशन, 1985.

अनुपूर्णा श्रीवास्तव

शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय

1907/8 गली नवां वेहड़ा, शक्ति नगर के पीछे, कुबी बेरी,

अमृतसर, पंजाब-143001

Mob no. 9517740620 anpurna96@gmail.com